राज्य जनित सांप्रदायिक हिंसा

[STATE-GENERATED COMMUNAL VOILENCE]

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
की
एम. फिल (अहिंसा एवं शांति अध्ययन) उपाधि के पाठ्यक्रम संबंधी
आवश्यकता की आंशिक परिपूर्ति हेतु प्रस्तुत

लघु शोध-प्रबंध

सत्र: 2012-13

शोध-निर्देशक

डॉ. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी

विभागाध्यक्ष
अहिंसा एवं शांति अध्ययन

शोधार्थी

राकेश विश्वकर्मा

नामांकन सं. 2012/210/03/001

ज्ञान शांति मैत्री

संस्कृति विद्यापीठ

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997 क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित)
पोस्ट: हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स , वर्धा-442005 (महाराष्ट्र) भारत

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ सं
अध्याय-1	**1-22**
राज्य	
अध्याय-2	**23-44**
सांप्रदायिकता	
अध्याय-3	**45-69**
स्वतंत्र भारत में सांप्रदायिकता	
अध्याय-4	**70-74**
धर्मनिरपेक्षता	
अध्याय-5	**75-86**
राज्य और सांप्रदायिकता	
निष्कर्ष	**87-88**
संदर्भ सूची	**89-90**
परिशिष्ट	

भूमिका

"*TO DO IS TO BE*"... *सुकरात*

करना ही होना है। यानि जो किया जा रहा है वही हो रहा है, इसलिए जरूरी है कि वही किया जाए जो मानवता के लिए सही हो।

राज्य जनित सांप्रदायिक हिंसा से तात्पर्य ऐसी सांप्रदायिक हिंसा से है, जो राज्य के द्वारा प्रेरित, संरक्षित और राज्य की राजनीति पर प्रभाव (सत्तापक्ष अथवा विपक्ष को लाभित करे) डालती हो। इसमें हिंसा के समय राज्य की निष्क्रियता अथवा हिंसक गतिविधियों पर अंकुश न लगाना भी उसका प्रेरक तत्व हो सकता है। इसका स्वरूप हमें औपनिवेशिक काल से ही देखने को मिल जाता है जिसमें अंग्रेजों ने अपने लाभ के लिए दो अलग-अलग संप्रदाय के लोगों को लड़ाया एवं उसका उचित लाभ भी लिया, जिससे वह लगभग 200 सालों तक भारत पर शासन कर सके। राज्य का चरित्र उसकी सत्ता संरचना के साथ ही हिंसक होता है इसलिए इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि राज्य एक हिंसक संस्था है, लेकिन इसका सांप्रदायिक होना अपने आप में ये दर्शाता है कि राज्य अपनी सत्ता और शक्तियों के लिए कितना चिंतित है। औपनिवेशिक काल से पहले इस तरह की घटनाएँ नहीं हुईं जिससे ये कहा जा सके कि आमुख राज्य का चरित्र सांप्रदायिक है, या सांप्रदायिक हिंसा के लिए वह जिम्मेदार रहा है। इसका ये कारण भी हो सकता है कि उस समय जनतंत्र न होकर राजतन्त्र था, जिसमें सत्ता का परिवर्तन नहीं होता था तथा सत्ता और शक्तियाँ एक ही व्यक्ति के अधीन होती थीं। न्यायालय राजा के अधीन रहने के कारण राजा के खिलाफ कोई वाद नहीं लाया जा सकता था, लेकिन आधुनिक काल में मशीनीकरण और औद्योगीकरण के बाद सत्ता और शक्तियों का स्थानांतरण अनौपचारिक रूप से पूंजीपतियों के हाथों में चला गया। आज भले ही हम कहें कि सरकार हमारी है, क्योंकि हमने उसे चुना है, लेकिन नहीं! ऐसा नहीं है सरकार को भले ही हमने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष चुनाव के द्वारा चुना हो लेकिन सरकार हमेशा

पूंजीपतियों की ही रही है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें उन पूंजीपतियों को देखने से मिल जाता है जोकि लगातार अपनी पूंजी को बढ़ा कर दुनियाँ के पूंजीपतियों की गिनती में शुमार हैं और ये भी कि सरकार की अधिक से अधिक नीतियाँ इन पूंजीपतियों के हितों को ध्यान में रखकर ही बनाई जाती हैं।

रजनी कोठरी के अनुसार- "भारतीय जनतंत्र और राजनीति का लक्ष्य एक विकासोन्मुख समाज बनाने से हटकर अब सिर्फ शासक वर्ग को सत्ता में बनाए रखना है। 'चुनाव अपने आप में लक्ष्य बन गए। वे परिवर्तन के बजाए यथा स्थिति तथा सत्ता को स्थायित्व प्रदान करने के औज़ार बन गए हैं।' जनतंत्र की राजनीति चुनावी राजनीति में सिमट कर रह गई है तथा चुनावी राजनीति संख्या का खेल बन गई है, और इस संख्या के खेल ने सांप्रदायिक राजनीति को बढ़ावा दिया है।"[1] (प्रभात, 2003)

सरकार चाहे किसी भी दल की क्यों न हो वो सिर्फ सत्ता में रहना चाहती है और इसके लिए सांप्रदायिक समूहों से मिलने से भी नहीं कतराती, क्योंकि इसका फायदा उसे चुनावों के समय होता है। इसके अतिरिक्त कहीं न कहीं राज्य का चरित्र भी सांप्रदायिक नज़र आता है जब दंगों के समय राज्य उन्हें रोकने के लिए कोई प्रतिक्रिया नहीं देता और मुआवजे के नाम पर तुष्टीकरण की नीति अपनाता है और ये भी कि सांप्रदायिकता और हिंसक गतिविधियाँ हमेशा ऐसे समय पर ही होती या यूँ कहें कि करवाई जाती हैं जब चुनाव का समय नजदीक आता है, जिससे कि किसी संप्रदाय का साथ देकर उनकी संवेदनाओं में शरीक होकर वाहवाही लूटी जा सके।

सांप्रदायिकता भले ही हमारे समय की एक अहम समस्या हो लेकिन कोई भी राजनीतिक दल इस समस्या को समाप्त करने के विषय में नहीं सोचता और ये भी कि अधिकतर राजनीति इन्हीं मुद्दों के आसपास घूमती रहती है। घोषित तौर पर भारत भले ही धर्मनिरपेक्ष राज्य हो और संविधान में कुछ मौलिक अधिकारों का प्रावधान भी क्यों न हों, लेकिन इन अधिकारों का फायदा

[1] प्रभात, कृति संस्कृति संधान, पृ.115 सं सुभास गताड़े अप्रेल-दिसंबर,2003

भी उन्हीं लोगों को मिल पाता है जिनके पास सत्ता और शक्ति हो, बाकी लोग तो अपने अधिकारों के लिए लड़ते-लड़ते मर जाते हैं, लेकिन उन्हे उचित न्याय नहीं मिल पाता उल्टे उन पर ये दबाव भी बनाया जाता है कि वे अपना केस वापस ले लें। सांप्रदायिक राजनीतिज्ञ राज्य की राजनीति को धार्मिक रूप देकर सांप्रदायिक तनाव को जन्म देते हैं।

शोध समस्या-

सर्वप्रथम तो सांप्रदायिकता को जानना और इसमें राज्य की भूमिका को इंगित करना, तत्पश्चात राज्य की हिंसक प्रवृति को समझना और एक धर्मनिरपेक्ष राज्य में अल्पसंख्यक वर्ग पर हो रही हिंसा को जानना।

'राज्य जनित सांप्रदायिक हिंसा' विषय पर आधारित लघु शोध में ऐतिहासिक सांप्रदायिक घटनाओं के साथ-साथ समसामयिक घटनाओं को भी रखने की कोशिश की गई है और ये बताने की कोशिश की गई है कि किस तरह एक राज्य की परिकल्पना के साथ हिंसा जुड़ी हुई है और ये भी कि राज्य अपने आप को बहुसंख्यक जनता के साथ रखकर और अल्पसंख्यकों के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपना कर अपना हित साधते हैं। साथ ही साथ राज्य के प्रशासन की एक पक्षीय प्रतिक्रियाओं को को भी इंगित करने का प्रयास किया गया है।

शोध के प्रथम अध्याय में राज्य के चरित्र को परिभाषित करने की कोशिश की गई है, क्योंकि राज्य अपने अस्तित्व के साथ अधिकारों और सत्ता का निर्माण करता है जिसमें जन हित और राज्य/सत्ता हित कई बार परस्पर अंतर्विरोधों के कारण आपसी समंजस्य स्थापित नहीं कर पाते जिससे द्वंद की स्थिति पैदा होती है, साथ ही संविधान द्वारा दिये गए मौलिक अधिकारों को व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। अध्याय दो में सांप्रदायिकता के स्वरूप और इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को रखकर सांप्रदाय, सांप्रदायिकता और सांप्रदायिक दंगा के विषय में है। अध्याय तीन में आज़ादी के बाद से अब तक की सांप्रदायिक हिंसाओं तथा उनसे जुड़े तात्कालिक कारणों के साथ-

साथ राजनैतिक और धार्मिक अंतर्विरोधों को रखने का प्रयास है। अध्याय चार में धर्मनिरपेक्षता एवं पाँच में राज्य की सांप्रदायिक प्रवृति को कुछ घटनाओं के माध्यम से जानने का प्रयास किया है।

शोध प्रविधि-

इस लघु शोध प्रबंध में प्रविधि के रूप में विवरणात्मक शोध प्रविधि का उपयोग किया है जिसमें शोध सामग्री के रूप में दंगों की रिपोर्ट, सांप्रदायिकता से संबंधित किताबें, लेख और अखबार का उपयोग किया गया है।

शोध का महत्व-

कोई भी शोध सैद्धांतिक होने के साथ साथ व्यावहारिक भी होना चाहिए जिससे समाज पर उसके प्रभावों को जाना जा सके। मैंने भी अपने इस लघु शोध में इसकी व्यवहारिकता को ध्यान में रखकर इसमें राज्य की सांप्रदायिक दशा एवं सांप्रदायिक राजनीति और उसके साथ ही पुलिस और प्रशासन के सांप्रदायिक व्यवहार की ओर ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की है जोकि समाज को सुरक्षा देने के लिए हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार के महत्व को समझते हुये उनके प्रति लोगों की जागरूकता के महत्व को भी समझाने का प्रयास है।

शोध की सीमाएँ

मेरा यह लघु शोध पूरी तरह से राज्य आधारित सांप्रदायिक हिंसा पर ही केंद्रित है जिसमें राज्य में घटित विभिन्न सांप्रदायिक दंगों को पृष्ठभूमि में रखकर राज्य की क्रिया-प्रतिक्रिया पर ही आधारित है।

निष्कर्ष-

राज्य की निर्मिती मनुष्य की रक्षा के लिए वर्ग संघर्ष का परिणाम थी लेकिन इसका शासन-तंत्र और शक्तियों का स्वरूप सत्ता के ऊर्ध्व रूप में ही रहा जिसकी परिणति ये थी कि जिस जनता की रक्षा के लिए इसका निर्माण हुआ उसी पर सत्तारोपित हो गई और ये काम लगभग एक विशिष्ट वर्ग के हाथ रहा। इसमें समय के साथ एक वर्ग विशेष ने अपनी बहुलता के कारण आधिपत्य जमाया। और अपने अनुसार शासन को चलाते रहे। जिन्हे हम सांप्रदायिक कह सकते है। क्योंकि ये लड़ाई धर्म के वर्चस्व के साथ-साथ राजनैतिक भी है, जिसका बहुसंख्यक जनता पर प्रभाव भी पड़ता है। सांप्रदायिकता धार्मिक विरोधों से कहीं अलग भाषा, कर्मकांड और ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाकर पैदा किया जाने वाला अंतर्विरोध है। जिसका फायदा औपनिवेशिक काल में अंग्रेजों द्वारा और वर्तमान में आज के राजनीतिक दल ले रहे हैं।

और जहाँ तक बात संविधान और अधिकारों की हैं, तो हमारे ये अधिकार हमको मिलते कब हैं? अभी तक हुये सांप्रदायिक दंगों की रिपोर्टें हमें बताती है कि दंगों में कौन और किस संप्रदाय के लोग मारे गए, किस संप्रदाय की संपत्ति को नष्ट किया गया,किस संप्रदाय की महिलाओं के साथ दुराचार हुआ और ये भी की उन घटनाओं को अंजाम देने वाले और उनके राजनेता आका कौन थे। लेकिन क्या उन पर कभी कार्यवाही अथवा सजा हुई । नहीं! आकोट और धुले के दंगे में ये साफ तौर पर देखा जा सकता है की राजनेता और पुलिस किस तरह दंगाइयों का साथ देते हैं। कोई भी पुलिस वाला कभी भी किसी को भी उठा लेता है। और हम ये तक नहीं कह पाते कि हमने किया क्या है? अधिकार सिर्फ लिखने से कुछ नहीं होगा, जब तक कि अधिकारों के प्रति

जागरूकता नहीं आती। सत्ताधारी संविधान को अपने अनुसार उपयोग करते रहेंगे और सांप्रदायिक दंगों जैसे कामों को अंजाम देकर और मानवीय मूल्यों की आहुती देते रहेंगे। सरकार कभी भी किसी को भी फाँसी पर लटका देती है, किसी को भी अंदर कर अपराधी घोषित कर देती है। ये बात सिर्फ किसी खास वर्ग या खास समुदाय की नहीं ये बात है सत्ता और उसकी शक्तियों की और उनके दुरोपयोग की। खैर हमारे संविधान में ही अधिकारों को सीमित किया गया है कि अगर शासन को लगे कि कोई अराजकता फैलाने की कोशिश कर रहा है तो उस पर अंकुश लगाया जा सके लेकिन कई मामलों में ये देखा गया है कि शासन द्वारा ही इसका गलत फायदा उठाया गया।

सांप्रदायिकता किसी भी धर्मनिरपेक्ष देश में एक वायरस की तरह है जोकि देश की एकता और अखंडता को तहस-नहस कर सकती है और ऐसे में अगर राज्य ही सांप्रदायिक हो जाए तो अल्पसंख्यक वर्ग का जीना दूभर हो जाएगा।